मन साधे जीवन सधै

—श्रीराम शर्मा आचार्य

मन साधे जीवन सधै

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा–२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो० : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : ७.०० रुपये

मन साधे जीवन सधै

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

कहा जाता है—"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" यह साधारण-सी लोकोक्ति एक असाधारण सत्य को प्रकट करती है और वह है—मनुष्य के मनोबल की महिमा। जिसका मन हार जाता है, वह बहुत कुछ शक्तिशाली होने पर भी पराजित हो जाता है और शक्ति न होते हुए भी जो मन से हार नहीं मानता, उसको कोई शक्ति पराजित नहीं कर सकती।

मनुष्य की वास्तविक शक्ति मनोबल ही है। मनोबल से हीन मनुष्य को निर्जीव ही समझना चाहिए। संसार के सारे कार्य शरीर द्वारा ही संपादित होते हैं, किंतु उसका संचालक मन ही हुआ करता है। मन का सहयोग पाए बिना शरीर-यंत्र उसी प्रकार निष्क्रिय रहा करता है, जैसे बिजली के अभाव में सुविधा-उपकरण अथवा मशीनें आदि।

बहुत बार देखा जा सकता है कि साधन-शक्ति तथा आवश्यकता होने पर भी जब मन नहीं चाहता तो अनेक कार्य बिना किए पड़े रहते हैं। शरीर के अक्षत रहते हुए भी मानसिक सहयोग के बिना कोई काम नहीं बनता और जब मन चाहता है तो एक बार रुग्ण शरीर भी कार्य में प्रवृत्त हो जाता है। जो काम मन से किया जाता है वह अच्छा भी होता है, और जल्दी भी। बेमन किए हुए काम न केवल अकुशल ही होते हैं, बल्कि बुरी तरह शिथिल भी कर देते हैं। मनोयोग रहने से मनुष्य न जाने कितनी देर तक बिना थकान अनुभव किए, कार्य में संलग्न रहा करता है, किंतु मन के उचटते ही जरा भी काम करने में मुसीबत आ जाती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि मनुष्य का वास्तविक बल, मनोबल ही है।

मनोबल के इस उत्थान–पतन से घटित होने वाले न जाने कितने परिवर्तन इतिहास में भरे पड़े हैं। सिकंदर जीता और पोरस हार गया। यह मोटा–सा ऐतिहासिक सत्य है। किंतु यदि गहराई से देखा जाए तो तथ्य इसके विपरीत है। विजयी होते हुए भी सिकंदर हारा और विजित होते हुए भी पोरस जीता। पोरस बंदी हुआ, उसकी सेनाओं ने तलवारें नीची कर लीं, यह शारीरिक हार थी। पर पोरस मन से नहीं हारा, यह सच्ची जीत थी। सिकंदर के यह पूछने पर, कि आपके साथ क्या व्यवहार किया जाए? पोरस का यह उत्तर कि, "एक राजा जो व्यवहार दूसरे राजा से करता है।" उसकी मानसिक विजय थी, जिसे सिकंदर को मान्यता देनी पड़ी और इतिहास को स्वीकार करना पड़ा कि पोरस हारकर भी नहीं हारा और सिकंदर जीतकर भी नहीं जीता।

यह महान सेनानियों, सम्राटों, महापुरुषों तथा योद्धाओं की बात रही। इनको लोग विशेष व्यक्ति कहकर मनोबल की बात को हल्का कर सकते हैं। सामान्य जनता के मनोबल के चमत्कार देखने के लिए गत विश्वयुद्ध के दौरान होने वाली दो–एक घटनाओं का स्मरण किया जा सकता है।

हिटलर ने हाहाकार मचा रखा था। उसका लक्ष्य तो पूरा विश्व था, किंतु इंगलैंड विशेष लक्ष्य बना हुआ था। उसके आक्रमण से 'इंगलैंड अब गया तब गया' की स्थिति आ गई थी। किंतु वहाँ के राजनेता भले ही एक बार विचलित हो उठे हों, लेकिन जनता ने अपने मनोबल को नहीं खोया था। इसका प्रमाण यह है कि जिस समय डेंकर्क के मोर्चे से ब्रिटेन की लगभग तीन, साढ़े–तीन लाख सेना भागी थी, उस समय उसकी अधिकांश युद्ध सामग्री भी वहीं छूट गई और इंगलैंड की सेना शक्ति–साधन तथा शस्त्र विहीन हो गई। नौबत यहाँ

तक आ पहुँची कि शत्रु को भी भ्रम में डालने के लिए खजूर के पेड़ कोलतार से रंग-रंग कर लंदन के चारों ओर तोपों के स्थान पर लगाए गए थे।

अब प्रश्न यह था कि निःशस्त्रता की पोल खुलने से पहले ही सेनाओं को साधन एवं शस्त्र संपन्न कर दिया जाए। यह काम इंगलैंड की नागरिक जनता का था। हार पर हार हो रही थी, सैन्य सामग्री समाप्त हो गई थी, हिटलर के हमले पर हमले हो रहे थे। ऐसी दशा में जनता के हाथ-पैर फूल जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। किंतु इंगलैंड की मनोधनी जनता ने अपना मनोबल नहीं खोया। वह हर भय, आपत्ति तथा खतरों की ओर से निरपेक्ष होकर अपने काम में दिन और रात जुट गई। इस हद तक जुट गई कि एक बार प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल एक कारखाना देखने गए, तो किसी ने उनका अभिवादन करने तक में समय खराब करना उचित न समझा। प्रधानमंत्री कारखाना घूमकर बाहर आए और पत्रकारों को बताया कि जिस इंगलैंड की जनता का मनोबल इतना ऊँचा है और जो अपने कर्त्तव्य को ठीक-ठीक समझकर पूरा करने में इतनी ईमानदार है, उस ग्रेट ब्रिटेन को एक हिटलर क्या, हजार हिटलर भी परास्त नहीं कर सकते। और कुछ ही समय के बाद इंगलैंड जीता और हिटलर की हार हुई। यह विजय किसकी थी, सैनिकों की? नहीं, यह इंगलैंड की जनता के मनोबल की विजय थी।

दूसरी घटना फ्रांस की है। जनरल पेताँ ने पेरिस के मोह में आकर मनोबल खो दिया और बिना हारे ही झंडा झुका दिया। फ्रांस की स्वतंत्रता प्रिय स्वाभिमानिनी जनता ने अपने इस निकृष्ट कल्याण को अकल्याण माना। उसने जनरल पेताँ का बहिष्कार कर दिया और जनरल दिगाल को नेता बनाया। पेरिस का पतन हो चुका था, किंतु

वहाँ की जनता सुलभ साधनों को लेकर जंगलों तथा पर्वतों में फैलकर गुरिल्ला युद्ध करने लगी। उसने अपनी स्वतंत्रता को सेना तथा नायकों पर निर्भर नहीं रहने दिया। भूखी-प्यासी फ्रांस की जनता इस मनोबल से लड़ी कि आखिर हिटलर को लेने के देने पड़ गए। फ्रांस स्वतंत्र हुआ और पेरिस पर फिर राष्ट्रध्वज फहराने लगा। यह विजय किस की थी, फ्रांस की उस जनता के मनोबल की, जिसके नेता विजय की आशा छोड़ बैठे थे।

एक घटना रूस की है। जहाँ की मनोधनी जनता ने मनोबल का रोमांचकारी उदाहरण उपस्थित किया है। एक दिन, रात के दो बजे हिटलर ने धोखे से रूस पर आक्रमण कर दिया और उसकी फौज रूस में दूर तक घुसकर मास्को तथा लेनिनग्राड तक पहुँच गई। लगभग पूरे यूरोप के बर्बर विजेता हिटलर की फौजें असावधान रूस पर टूट ही नहीं पड़ीं, प्रमुख राजनगरों में पहुँच गईं। संयोग की भयंकरता से रूसी जनता में भगदड़ मच जाना चाहिए थी, किंतु नागरिकों ने हिम्मत न हारी। वह गली-गली, सड़क-सड़क, कूँचे-कूँचे, घर-द्वार, हाट-वाट दुश्मन से जूझ पड़ी। उसके शस्त्र लाठी, डंडा, भाला, बल्लम, मुँह-हाथ, प्याले-प्लेट, मेज-कुरसी आदि बन गए। मास्को तथा लेनिनग्राड की गलियाँ खून और लाशों से भर गईं, लगभग डेढ़ करोड़ रूसी जनता काम आई, जिसमें से छः लाख वे बलिदानी नागरिक थे, जिन्होंने अपना पूरा राशन सेना को दे दिया था और खुद भूख से तड़प-तड़पकर प्राण दे दिए थे। इसका फल यह हुआ कि रूस के लेनिनग्राड तथा मास्को की भूमि से हिटलर की फौजें वापस न आईं और वहीं से हिटलर की पराजय प्रारंभ होकर, जर्मनी की बरबादी तक पहुँची। यह विजय किसकी थी? रूसी फौजों, नेताओं की अथवा लाठी-डंडों, प्याले-प्लेट आदि अस्त्रों की? सर्वथा नहीं, यह विजय थी रूस

की जनता के महान मानसिक बल की, जो उस अंतक आपत्ति में भी यथावत बना ही नहीं रहा, बल्कि और अधिक बढ़ गया।

रूस, इंगलैंड तथा फ्रांस की जनता ही नहीं, अभी के चीनी आक्रमण तथा पाकिस्तान के युद्ध में भारतीय जनता ने जिस मनोबल का परिचय दिया उससे न केवल देश की रक्षा ही हुई, बल्कि संसार में भारत का मान ऊँचा हो गया।

इस प्रकार कहना होगा कि युद्ध से लेकर नित्य-प्रति की सफलताओं में मनोबल ही काम किया करता है। मनोधनी व्यक्ति बड़ी से बड़ी आपत्तियों को जीतकर अपना मार्ग बना लेता है। कोई साधन न होने पर भी मानसिक बल के विश्वासी कभी किसी परिस्थिति से परास्त नहीं होते। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह बड़ी से बड़ी और विकट से विकट परिस्थिति में भी अपना मनोबल न जाने दे और सदैव याद रखे—"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।"

सांसारिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति और उनके उपभोग की दृष्टि से शारीरिक बल का महत्त्व निर्विवाद है। रोगी और दुर्बल शरीर वालों को धरती के सुख के सारे उपहार बेकार हैं, उनसे उसकी परेशानियाँ ही बढ़ती हैं, झंझट ही उत्पन्न होते हैं। कहा भी है, **'सर्व सुखी निरोगी काया'** अर्थात रोग रहित सशक्त शरीर सब सुखों का मूल है।

किंतु मन का बल शरीर के बल से भी बड़ा है। इसके अभाव में शारीरिक बल भी किसी काम का नहीं होता। देखा गया है कि उत्तम स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों को भी जब कोई मानसिक आघात लगता है, तो वे अपनी स्थिति सँभाल नहीं पाते और अपने सामान्य जीवनक्रम से गिरकर स्वयं ही अपनी दशा दयनीय बना डालते हैं। एक व्यक्ति बड़ा धनी था। उसका स्वास्थ्य भी बड़ा अच्छा था। उन्होंने जीवन में कभी

असफलता न देखी थी। कभी सफलता के लिए उन्हें संघर्ष करने की आवश्यकता भी न पड़ी थी। पैतृक व्यवसाय हाथ लग गया था, खूब अच्छे खाते-पीते और मस्त रहते थे। किसी तरह का उन्हें कोई अभाव न था।

मित्रों की सलाह पर एक दिन उन्होंने काफी बड़ा सौदा कर लिया। रातों-रात भाव बदला और दूसरे दिन जब बिक्री का समय आया तो उन महाशय को पता चला कि इससे उन्हें कई लाख का घाटा हुआ। बस, सेठजी का दिल धड़कने लगा। हक्के-बक्के रह गए। दोबारा सही आवाज भी न निकली। विक्षिप्त से हो गए। चाहते तो उनके पास तब भी लाखों की संपत्ति बची हुई थी, दोबारा फिर रोजगार खड़ा कर लेते। पर सेठजी का मनोबल इतना कमजोर था कि वे स्थिति की गंभीरता को बरदाश्त न कर सके और पागल हो गए। इसी अफसोस में पड़े रहने के कारण अंत में उनकी मृत्यु भी हो गई।

धन कोई महत्त्व की वस्तु नहीं, उसके आने या चले जाने से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता भी नहीं, पर मानसिक दुर्बलता के कारण उक्त महाशय को जीवन जैसी बहुमूल्य वस्तु की क्षति उठानी पड़ी।

अपने परिचय के पाठकजी हैं। कुछ वर्ष पूर्व जब वे मिले थे, उनका शरीर बड़ा दुबला-पतला था, साधारण अध्यापक थे। पाँच व्यक्तियों का परिवार था, उनमें भी कोई न कोई आएदिन बीमार ही बना रहता था। पाठक जी कभी भी मिलते तो उनकी दयनीय स्थिति पर कुछ सहायता करने की इच्छा होती तो वे कहते—नहीं भाई, स्थिति कमजोर है पर मेरा मन कमजोर नहीं, तन हारा है, मन नहीं, आप देखिए तो सही, मैं आपको क्या करके दिखाता हूँ।

ऐसी कमजोर स्थिति में भी मास्टर साहब का मन कभी म्लान न हुआ, सदैव हँसते-खेलते विनोद करते मिलते। भीतर ही भीतर उनकी योजनाएँ चलती रहतीं। बड़ी गुप्त और बड़ी ठोस योजनाएँ। आकाश और पाताल को उलट-पुलट कर डालने वाली योजनाएँ।

प्राइमरी स्कूल के मास्टर साहब की स्थिति में परिवर्तन शुरू हुआ। बी० ए० किया, एम० ए० किया और प्रोफेसर बन गए। मस्ती जीवन में थी ही, अभाव था सो पूरा हो गया। अब उनकी आय पहले से कई गुना अधिक है। घर-गृहस्थी ऐसी जिसे देखकर मन प्रसन्नता से भर जाए। मास्टर साहब का स्वास्थ्य ऐसा बढ़िया हो गया जैसे उन्होंने वर्षों कसरत की हो। इतना बड़ा परिवर्तन क्या उनके भाग्य ने किया? नहीं, वह तो उनका तीक्ष्ण मनोबल था जिसने यह चमत्कार कर दिखाया।

अनिश्चितता की मनोवृत्ति रहने के कारण लोगों के उपाय कारगर नहीं होते। सफलता का एक आधार है—व्यक्ति का मनोबल। मनुष्य के मन में कल्पनाएँ उठें और उन्हें पूर्ण करने के प्रयत्न करने का वह साहस करे। न हिम्मत छूटे, न धैर्य टूटे, तो इच्छाएँ भी पूरी होती हैं। इससे जीवन में आशा का संचार होता है, निराशा दूर भागती है। काम में सफलता मिलती जाती है, तो नए काम हाथ में लेने और उन्हें पूरा करने की प्रवृत्ति जागती है।

यह सच है कि प्रत्येक सफलता मनुष्य का मनोबल बढ़ाती है पर क्रिया क्षेत्र में यह बात सदैव संभव नहीं है। संघर्ष करते हुए सफलता के साथ असफलता भी हो सकती है। आशा के साथ ही निराशा की भी उत्पत्ति हो सकती है। मनोबल की परीक्षा का यही समय होता है। आशायुक्त जीवन से निरंतरता आती है तो निराशा से निकम्मापन भी आ सकता है। यहाँ परिस्थिति न सँभाले तो मनुष्य

के सारे प्रयास व्यर्थ हो सकते हैं। इसलिए यह बहुत जरूरी बात है कि सफलता की आशा रखें पर साथ ही असफलता के समय धैर्य भी जाग्रत रखें। किसी भी अवस्था में मनोबल क्षीण न हो, तो रुका कदम रुका नहीं रहता, निराशा आशा में बदलती और हारी बाजी फिर से जीत में बदल जाती है।

इच्छाएँ करें पर यह न भूलें कि उनका विकास एकाएक नहीं हो जाता। कुछ समय लगता है, कुछ श्रम लगता है, परिस्थितियों की अनुकूलता और प्रतिकूलता का भी विचार करना पड़ता है। इतना सब न करें, तो इच्छाएँ कल्पना मात्र रह जाएँगी और उनसे कोई उद्देश्य पूरा न होगा।

पहले छोटी इच्छाएँ कीजिए और उन्हें संकल्प का रूप दीजिए। एक संकल्प पूरा होगा तो आपका मनोबल बढ़ेगा, उत्साह और उल्लास आएगा। क्रमश: अपने संकल्प का स्तर बड़ा बनाइए और इस तरह अपने मनोबल को और भी ऊँचा उठाते हुए चले जाइए, पर यह याद रहे कि संकल्प टूटना नहीं चाहिए अन्यथा मन में निराशा उत्पन्न होगी और मानसिक क्रियाशक्ति को छिन्न-भिन्न कर देगी।

उदाहरणार्थ—जब आप प्रात:काल सोकर उठते हैं तो बिस्तर त्यागने के पूर्व आप कुछ क्षण रुकिए। स्वस्थ और चैतन्य होकर शांत मुद्रा में बैठिए। परमात्मा को याद कीजिए और यह भावना कीजिए कि आज का दिन आपका एक जीवन है। आज आप अपनी शक्ति का अपव्यय रोकेंगे और ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। दिन भर कामुक विचारों से बचते रहिए और अंत तक आज का अपना प्रण पूरा कर ही जाइए। यह आपका एक छोटा संकल्प हुआ। धीरे-धीरे संकल्प के स्वरूप और उसकी अवधि को और भी चौड़ा करते रहिए। आपका मनोबल संकल्प की तौल के अनुसार बढ़ता ही जाएगा।

आत्म-विकास के इन कार्यक्रमों में मन को व्यस्त रखिए तो वह आपके बड़े काम आएगा, आपको बहुत लाभ देगा। ऐसा नहीं करेंगे तो मन स्थिर नहीं रहेगा, यह आप निश्चय जान लीजिए। मन को काम चाहिए। प्रोग्राम के बिना तो वह एक क्षण नहीं टिक सकता। यह नहीं तो आत्म-विनाश की खुराफात शुरू कर देगा। ताश-तमाशे के लिए, सैर-सपाटे के लिए, लड़ाई-झगड़ा, कानाफूसी, मजाक आदि की ओर वह तभी दौड़ता है, जब उसे कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं मिलता। इसके सिवाय मनोबल क्षय होने के और कोई कारण नहीं। निर्धनता, दुर्बलता, दैन्यता आदि इसी आत्मविनाश के फल हैं। इन्हें रोकिए और अपना जीवन बरबाद होने से बचाइए।

याद रखिए कि स्वाभिमान ऊँचा रहता है तो मनोबल भी बढ़ा हुआ होता है। हीन भावनाएँ रखेंगे और गलत काम करेंगे, तो आपका स्वाभिमान कौन ऊँचा रहने देगा? घर वाले डाँट मारेंगे, अध्यापक झिड़कियाँ देगा, प्रधान फटकार लगाएगा, फैक्टरी का मालिक काम से निकाल देगा। इससे आपके अपमान हो जाने का उतना भय नहीं है जितना आपके दुर्बल मन हो जाने का। यदि आप ऐसा करते हैं तो वह आपकी सबसे बड़ी कमजोरी होगी।

आप छोटे होने का विचार अपने मन से निकाल कर दूर फेंकिए, आपके मन में अपार सामर्थ्य है। इधर देखिए, यह जो विज्ञान फैला पड़ा है, यह सब मन की शक्ति का चमत्कार है। उस शक्ति का अपमान न होने दीजिए। अपने मनोबल को सदैव दृढ़ रखिए। मन हार जाता है तो यह संसार भी दुःख का आगार ही समझ में आता है। आपकी सफलता, आपकी जीत, आपके मन की जीत है। मन को बलवान रखना आपका धर्म है। इससे आप संसार में बड़े काम कर सकते हैं, बड़ी सफलताएँ अर्जित कर सकते हैं।

मन को साधिए

मन एक देवता है। इसे ही शास्त्रों में प्रजापति कहा गया है। वेदांत में बतलाया गया है कि हर व्यक्ति की एक स्वतंत्र दुनिया है और वह उसके मन के द्वारा सृजन की हुई है। मनुष्य की मान्यता, भावना, निष्ठा, रुचि एवं आकांक्षा के अनुरूप ही उसे सारा विश्व दिखाई पड़ता है। यह दृष्टिकोण बदल जाए तो मनुष्य का जीवन भी उसी आधार पर परिवर्तित हो जाता है। इस मन देवता की सेवा-पूजा का एक ही प्रकार है—मन को समझा-बुझाकर उसे सन्मार्ग पर लगाना, सही दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत करना। यदि यह सेवा कर ली जाए तो सामान्य व्यक्ति भी महापुरुष बन सकता है। उसके वरदान का चमत्कार प्रत्यक्ष देख सकता है।

इस तथ्य की सुनिश्चितता में रत्ती भर भी संदेह की गुंजाइश के लिए स्थान नहीं है कि, "जो हम सोचते हैं सो करते हैं और जो करते हैं सो भुगतते हैं।" मन ही हमारा मार्गदर्शक है, वह जिधर ले चलता है शरीर उधर ही जाता है। यह मार्गदर्शक यदि कुमार्गगामी है तो विपत्तियों और वेदनाओं के जंजाल में फँसा देगा और यदि सुमार्ग पर चल रहा है तो शांति और समृद्धि के सत्परिणाम उपलब्ध होना सुनिश्चित है। ऐसे अपने इस भाग्य-विधाता की सेवा हम क्यों न करें? इस मार्गदर्शक को ही क्यों न पूजें? गौ और ब्राह्मण की सेवा से यदि पुण्य फल मिल सकता है तो उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण इस मन देवता की सेवा से पुण्य-फल क्यों न प्राप्त होगा? निश्चय ही सबसे अधिक पूजनीय, वंदनीय और सेवनीय यह मन का देवता ही है।

सच्चे ब्राह्मणों, देवताओं और संतों के आशीर्वाद से बहुत सुख मिलता सुना गया है, पर मन-देवता का आशीर्वाद फलित होते हुए हम में हर कोई आसानी से चाहे जब देख सकता है। यदि सेवा-पूजा करके

मन-देवता को इस बात के लिए मना लें कि—"वह सच्ची भूख लगने पर पेट की आवश्यकता से केवल उपयोगी पदार्थों को ही मुख में जाने दिया करे, चटोरेपन की आदत को सर्वथा छोड़ दे।" तो इतना मान लेने से आपकी बिगड़ी हुई पाचन क्रिया ठीक हो सकती है, शुद्ध रक्त बनना आरंभ हो सकता है और जो कमजोरी तथा बीमारी निरंतर घेरे रहती है उनसे बहुत ही आसानी से छुटकारा मिल सकता है। शरीर स्वस्थ, सबल और सतेज हो सकता है और जिस स्वास्थ्य के लिए तरसते रहना पड़ता है, वह चिरस्थायी हो सकता है।

यदि मन का देवता यह मान ले कि, "सृष्टि के समस्त जीव जिस प्रकार काम-सेवन के संबंध में प्रकृति की मर्यादा का पालन करते हैं उसी प्रकार वह भी करे।" तो इतनी मात्र उसकी स्वीकृति से आपका मुरझाया हुआ चेहरा कमल के फूल की तरह खिल उठेगा। जीवन रस बुरी तरह निचुड़ते रहने से पौरुष खोखला होता चला जाता है। इस बरबादी को न करने के लिए यदि मन सहमत हो जाए तो आपके मस्तिष्क और कार्य-कलापों में से ओज टपकने लगेगा। जैसे सिंह की हर क्रिया, हर चेष्टा उसके गौरव के अनुरूप होती है, वैसे ही ब्रह्मचर्य पालन करने से वह बरबादी से बचाया हुआ ब्रह्मतेज आपकी प्रत्येक चेष्टा में से प्रस्फुटित होने लगेगा। तब आप खोखले कागज के खिलौने नहीं, एक लौह पुरुष सिद्ध होंगे जिसकी आँखों में तेज, बुद्धि में प्रौढ़ता और क्रिया में प्रामाणिकता की छाप होगी। यह लाभ आपको बड़ी आसानी से मिल सकते हैं, यदि आप मन के देवता को इंद्रियों का दुरुपयोग न करके आहार-विहार को प्राकृतिक और नियमित रखने की एक छोटी-सी बात पर सहमत कर लें। सेवा-साधना में बड़ी शक्ति है, उससे भगवान भी वश में हो सकते हैं, फिर मन देवता द्रवित क्यों न होंगे।

हर आदमी को लगता है कि वह काम में बहुत व्यस्त रहता है, उस पर जिम्मेदारियों का तथा परिश्रम का बहुत बोझ रहता है। पर सही बात ऐसी नहीं। उसका कार्यक्रम अनियंत्रित, बेसिलसिले, अस्तव्यस्त ढंग का होता है, इसलिए थोड़ा काम भी बहुत भार डालता है। यदि हर काम समय विभाजन के अनुसार सिलसिले से, ढंग और व्यवस्था के आधार पर बनाया जाए तो सब काम भी आसानी से हो सकते हैं, मानसिक भार से भी बचा जा सकता है और समय का एक बहुत बड़ा भाग उपयोगी कार्यों के लिए खाली भी मिल सकता है। हमारे अविकसित देश में तो लोग पढ़ने में ध्यान देना तो दूर, उसका महत्त्व समझने तक में असमर्थ हो गए हैं। पर जिनकी विवेक की आँखें खुली हुई हैं वे जानते हैं कि इस संसार की प्रधान शक्ति ज्ञान है और वह ज्ञान का बहुमूल्य रत्न-भंडार पुस्तकों की तिजोरियों में भरा पड़ा है। इन तिजोरियों की उपेक्षा करके कोई व्यक्ति अपने अंत:प्रदेश को न तो विकसित कर सकता है और न उसे महान बना सकता है। अध्ययन एक वैसी ही आत्मिक आवश्यकता है जैसे शरीर के लिए भोजन। इसलिए मन-देवता को राजी करना होगा कि दैनिक कार्यक्रम की व्यवस्था बनाकर वे कुछ समय बचावें और उसे अध्ययन के लिए नियत कर दें। नित्य का अध्ययन वैसा ही अनिवार्य बना दें जैसा कि शौच, स्नान, भोजन और शयन आवश्यक होता है।

स्वाध्याय और ज्ञान के बाद तीसरी विभूति है—स्वभाव। इन तीन को ही मिलाकर पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अपने सब कार्यों में व्यवस्था, नियमितता, सुंदरता, मनोयोग तथा जिम्मेदारी का रहना स्वभाव का प्रथम अंग है। दूसरा अंग है—दूसरों के साथ नम्रता, मधुरता, सज्जनता, उदारता एवं सहृदयता का व्यवहार करना। तीसरा अंग है—

धैर्य, अनुद्वेग, साहस, प्रसन्नता, दृढ़ता और समता की संतुलित स्थिति बनाए रहना। ये तीनों ही अंग जब यथोचित रूप से विकसित होते हैं तो उसे स्वस्थ कहा जाता है। ये तीनों बातें भी मन की स्थिति पर निर्भर रहती हैं।

आमतौर से लोग किसी काम को आरंभ करते हैं और उसे बिना पूरी तरह समाप्त किए ही अधूरा छोड़ देते हैं। पुस्तक पढ़ेंगे तो उसे समाप्त करके यथास्थान रखने की अपेक्षा जहाँ की तहाँ पड़ी छोड़कर चल देंगे। कपड़े उतारेंगे तो उन्हें झाड़कर तह बनाकर यथास्थान रखने की बजाय चाहे जहाँ उतार कर फेंक देंगे। पानी पिएँगे तो खाली गिलास को उसके नियत स्थान पर रखकर तब अन्य काम करने की बजाय उसे जहाँ का तहाँ पटककर और काम में लग जाएँगे। काम को पूरी तरह समाप्त किए बिना उसे अधूरा छोड़कर चल देना, स्वभाव का एक बड़ा भारी दोष है। इसका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ता है और उनके सभी कार्य प्रायः अधूरे पड़े रहते हैं। व्यवस्था के साथ सफलता का अटूट संबंध है। इस बात को मन महोदय मान लें, तो समझना चाहिए कि हारी बाजी जीत ली। अपनी प्रत्येक वस्तु को सुंदर, कलात्मक, सुव्यवस्थित रखने के लिए मन की सौंदर्य भावना विकसित होनी चाहिए। उसी सौंदर्य में किसी व्यक्तित्व का सम्मान छिपा हुआ है।

मधुरता, नम्रता और उदारता किसी व्यक्ति की महानता का अधिकृत चिह्न है। जिसके हृदय में दूसरों के प्रति आदर, प्रेम और सद्भाव है वह निश्चय ही उसके साथ सज्जनता का व्यवहार करेगा। इसमें यदि थोड़ा समय लगता हो या खरच बढ़ता हो, तो भी उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन करेगा। बहुत करके तो विनम्र मुस्कराहट के साथ मधुर शब्दों में वार्त्तालाप करने से काम चल जाता है। शिष्टाचार का ध्यान रखना,

अपने कार्य दूसरों से कराने की अपेक्षा औरों के ही छोटे-मोटे काम कर देना यह मामूली-सी बात है पर इससे हमारी सज्जनता की छाप दूसरों पर पड़ती है। दूसरों की कड़ुई बात को भी सह लेना, दूसरों के अनुदार व्यवहार को भी पचा जाना और बदले में अपनी ओर से सज्जनता का ही परिचय देना, अपनी वाणी या व्यवहार में अहंकार या उच्छृंखलता की दुर्गंध न आने देना, सत्पुरुषों का मान्य लक्षण है। अपना स्वभाव ऐसा ही बनाने के लिए यदि मन को साध लिया जाए तो मनुष्य अजातशत्रु बन सकता है। इस प्यार की मार से उसके सभी शत्रु मूर्च्छित और मृतक हो सकते हैं। मित्र तो उसके चारों ओर इसी प्रकार घिरे रह सकते हैं जैसे खिले हुए कमल के आस-पास भौंरे मँडराते रहते हैं। यह सिद्धि जीवन की सफलता के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर मिलती उसे ही है, जिसने मन के देवता को इसके लिए तैयार कर लिया है।

जीवन में बहुधा अप्रिय प्रसंग आते रहते हैं। यह जरूरी नहीं कि हमेशा प्रिय परिस्थितियाँ तथा अनुकूल व्यवहार ही उपलब्ध हों। हानि, घाटा, रोग, शोक, विछोह, अपमान, असफलता, आपत्ति आदि की विपन्न स्थितियाँ भी सुख-संपत्ति की भाँति आती रहती हैं। इनका आना अनिवार्य है। कोई भी इन विविधताओं से बच नहीं पाता। इस उभयपक्षीय क्रम को सहन करने योग्य मनोभूमि बनाए रखना हर विवेकशील का कर्त्तव्य है। प्रतिकूलताएँ आने पर जो घबराते हैं, अधीर होते हैं, किंकर्त्तव्यविमूढ़ बनते हैं वे अपनी इस दुर्बलता को भी एक नई विपत्ति के रूप में ओढ़ते हैं और उनका कष्ट दूना हो जाता है। इसके विपरीत साहसी और धैर्यशील लोग, कठिन से कठिन समय को भी अपने साहस के बल पर काट देते हैं और निराशा को चीरकर आशा का वातावरण बनाने के लिए प्रयत्न करके फिर कामचलाऊ

स्थिति उत्पन्न कर लेते हैं। जरा सी बात पर घबरा जाना, चिंतित हो जाना, रोना-पीटना, निराश हो बैठना, उत्तेजित हो जाना, क्रोधांध होकर न कहने योग्य कहने लगना और न करने योग्य कर बैठना, यह सब मनुष्य की क्षुद्रता और नास्तिकता के चिह्न हैं। जिसका हृदय विशाल है, कलेजा चौड़ा है, दृष्टिकोण दूरवर्ती है, वह आपत्तियों और प्रतिकूलताओं को कुछ क्षण ठहरने वाली प्रकृति की एक लहर मात्र मानता है और उसे हँसते हुए उपेक्षा की दृष्टि रखते हुए सरलतापूर्वक पार कर लेता है। पर यह संभव तभी है, जब मन के देवता हमारी सेवा से प्रसन्न होकर अपने आपको इस संतुलित स्थिति में रखने के लिए तैयार हो जाएँ। वे अपने सहयोगी बन जाएँ, विरोध करना और सताना छोड़ दें, तो अच्छा स्वभाव बनने में देर ही कितनी लगेगी और अच्छा स्वभाव बन जाना इस संसार की एक बहुमूल्य संपत्ति प्राप्त करके भारी अमीरी भोगने के आनंद से भी बढ़कर है।

मन के देवता प्रसन्न होकर भौतिक जीवन को आनंदमय और सुसंपन्न बनाने के लिए हमें स्वास्थ्य, ज्ञान और स्वभाव की उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। इन वरदानों को पाकर हमारे सांसारिक जीवन में धन, यश, प्रसन्नता, प्रफुल्लता, संतोष, उल्लास, प्रेम, सहयोग सभी कुछ मिलने लगता है। सफलता के द्वार हर दिशा में खुल जाते हैं। इस जीवन में स्वर्गीय सुख की उपलब्धि, उन्नति एवं जीवन लक्ष्य की प्राप्ति भी मन के सधने पर ही अवलंबित है। सेवा का पुण्य फल प्राप्त करने के लिए हमें अवश्य ही प्रयत्नशील होना चाहिए, पर सेवा करें किसकी ? सबसे प्रथम सेवा का अधिकारी, सबसे अधिक सत्पात्र, सबसे अधिक समीपवर्ती, संबद्ध एवं विश्वस्त अपना मन ही है। हमें इसी की ओर सबसे पहले, सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए।

सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हमारा मन

सेवाओं में, समझाने की सेवा सबसे बड़ी मानी गई है। ब्राह्मण ने इसी सेवा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया, इसलिए वह सब वर्णों में श्रेष्ठ तथा पूज्य माना गया। किसी को धन या कुछ वस्तुएँ दे देने का लाभ थोड़ी ही देर सुख पहुँचाता है, पर यदि कोई समझ जाने से, समझाने से कुमार्ग छोड़कर सुमार्ग पर चलने लगे, तो उसके सुखद सत्परिणामों की अत्यंत विशाल संभावना बन जाती है।

सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हमारा अपना आपा, अपना मन ही है। वह भी वाल्मीकि से कम नहीं है। यदि हम नारद बनकर उसे समझा लेते हैं, तो आज जो अपनी घटिया दर्जे की स्थिति है, वह न रहेगी। उसमें निश्चित रूप से परिवर्तन होगा। महानता उपलब्ध होगी, जिसके फलस्वरूप अपना अंतःकरण सुख-शांति से भर जाएगा, शत्रु मित्र बनेंगे। असहयोग करने वाले सहयोगी बनेंगे। उपेक्षा की दृष्टि से देखने वालों की आँखों से प्रेम और श्रद्धा चमकने लगेगी। अपना स्वभाव ऐसा मधुर होगा कि हर कोई संपर्क में आने की, लिपटने की कोशिश करेगा। कार्य ऐसे होंगे जिनसे अपना मान और महत्त्व सर्वसाधारण की दृष्टि में दिन-रात बढ़ता ही चलेगा।

सेवा-धर्म की उपयोगिता और आवश्यकता स्वीकार कर लेने के बाद, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सेवा किसकी करें? मन में विश्व हित की, लोक-कल्याण की, जनता-जनार्दन की सेवा करने की भावना तो होनी चाहिए पर उसका कार्यक्षेत्र एक नियत मर्यादा में ही होना चाहिए। अन्यथा बिना विवेक की सेवा का लाभ कुपात्र उठाएँगे अथवा ऊसर में बीज बोने की तरह शक्ति का अपव्यय होगा।

सेवा करते समय सत्पात्र का ध्यान रखना आवश्यक है। अपने से पिछड़े समीपवर्ती, संबद्ध और विश्वास रखने वालों की ही विचारात्मक सेवा हो सकनी संभव है। ऐसे कितने ही व्यक्ति हो सकते हैं जो उपर्युक्त कसौटियों पर ठीक उतरें। उन सबकी भी यथाशक्ति सेवा आरंभ करनी चाहिए, पर अच्छा यह है कि हम अपने प्रयोग और परीक्षण के लिए किसी एक को चुनें और उसके साथ पूरा-पूरा श्रम करके यह देखें कि हमारी सेवा-भावना और सेवा-शक्ति कितनी सफल हो सकी ? हमने अपने प्रयत्न को कितनी तत्परता के साथ किया और उसका क्या परिणाम निकला ?

इस दृष्टि से हमारा अपना मन ही सेवा का सबसे बड़ा अधिकारी हो सकता है। जीवात्मा से वह छोटा भी है, संबद्ध भी है, समीप भी है और विश्वासपात्र भी है, फिर उसी को क्यों न अपना सेवाभाजन बनाएँ ? यह सोचना ठीक नहीं कि उपकार तो दूसरों का होता है, अपना उपकार करना तो स्वार्थ होगा, उसे क्यों करें ? बात ऐसी है कि इस संसार में सभी अपने या सभी विराने हैं। सबमें अपना ही आत्मा समाया हुआ है इसलिए कोई भी विराना नहीं। यदि विराना ही मानना हो तो मन भी अपना कहाँ है ? वही अपने कहने में कब चलता है ? उसका व्यवहार भी मित्रों जैसा कब है ? दुष्ट साथी और विश्वासघाती नौकर की तरह वह हमें क्या कम दुःख देता है ? जब अन्य दुष्टों को सुधारने की बात सोची जाती है, तो अपने इस चौबीस घंटे के साथी की ही उपेक्षा क्यों की जाए ? जब दूसरों के बेटों को उपदेश देने की योजना है, तो अपने बेटे को भी उपदेश करने में क्या दोष है ? जब सारे नारी-समाज के उद्धार करने की इच्छा हो, तो अपनी पत्नी को नारी समाज के बाहर समझकर, उसकी उपेक्षा क्यों की जाए ?

जीवन के उत्थान एवं पतन का केंद्र मन है। यह मन जिधर चलता है, जिधर इच्छा और आकांक्षा करता है उधर ही उसकी दुनिया बनकर

खड़ी हो जाती है। उसमें ऐसा अद्‌भुत आकर्षण एवं चुंबकत्व है कि जिससे खिंचती हुई संसार की वैसी ही वस्तुएँ, घटनाएँ, साधन-सामग्री, मानवी एवं दैवी सहायता एकत्रित हो जाती है, जैसे कि उसने इच्छा एवं कामना की थी। कल्पवृक्ष की उपमा मन को दी गई है। पृथ्वी का कल्पवृक्ष यही है। उसमें ईश्वर ने वह शक्ति विशाल परिमाण में भर दी है कि जैसा मनोरथ करे, वैसे ही साधन जुट जाएँ और उसी पथ पर प्रगति होने लगे। मन को ही कामधेनु कहा गया है। वही कामना भी करता है और वही उनकी पूर्ति के साधन भी जुटा लेता है।

यदि सेवा ही करनी है तो इस कामधेनु की सेवा क्यों न करें? यदि पूजन और सिंचन करना है, तो इस कल्पवृक्ष का ही क्यों न करें? जिससे हमारा अपना अभीष्ट सिद्ध हो और साथ ही संसार का भी सब प्रकार से कल्याण होने का योग बने। मन की अद्‌भुत शक्तियों का जितना-जितना पता चलता है, उतना ही मनुष्य आश्चर्यचकित होता जाता है। मनोबल और उसकी इच्छाशक्ति के चमत्कारों को जिसने देखा, सुना है और समझा है वे जानते हैं कि हाड़-मांस की इस ठठरी में छिपा हुआ एक प्रचंड बेताल के रूप में यह मन ही बैठा रहता है। यह पैशाचिक कुकृत्य भी कर सकता है, स्वर्ग जैसे नंदन वन की रचना कर सकता है और कुंभकरण की तरह पड़ा-पड़ा जीवन-क्षणों को बरबाद भी करता रह सकता है। अन्य देवताओं की पूजा फल दे न दे, यह संदिग्ध है, पर मन का देवता प्रत्यक्ष है। इसकी आराधना कभी निष्फल नहीं जाती। यह तुरंत फल देता है। गाय की दिन में ठीक तरह सेवा करने से शाम को ही दूध की डेगची भर देती है। यह मन की कामधेनु उससे भी अधिक उदार और निश्चित फलदायिनी है। गाय की सेवा कभी निष्फल भी हो सकती है पर इस कामधेनु का प्रत्युपकार तो निश्चित है।

यदि हम अपने आप ही अपने मन की सेवा करने लगें तो सेवा का सत्परिणाम देखने के लिए परलोक की, अगले जन्म की प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी, वरन नकद धर्म की तरह 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' की उक्ति प्रत्यक्ष चरितार्थ होती दिखाई देगी। संसार के महापुरुषों के जीवन पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से पता चलता है कि परिस्थितियों, साधनों एवं योग्यताओं की दृष्टि से वे आरंभ में बहुत पिछड़े हुए ही थे। उनकी जन्म, जाति या सांसारिक स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी औसतन दर्जे के लोगों की होती है। उनमें एक ही विशेषता थी— 'मनोबल की प्रखरता'। इसी बल के आधार पर उन्होंने इतने बड़े कार्य संपन्न कर डाले जिन्हें देखने से हैरत होती है।

इन पंक्तियों में विश्व की उन असंख्य घटनाओं के उल्लेख करने का अवसर नहीं है जिनमें साधारण स्थिति के व्यक्तियों ने अपने प्रकट मनोबल और प्रबल पुरुषार्थ के बल पर अनहोनी जैसी बातों को संभव कर दिया। पुराणों और इतिहासों में पन्ने-पन्ने पर ऐसी गाथाएँ हमें पढ़ने को मिल सकती हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की महानता उसे उपलब्ध साधनों या परिस्थितियों में नहीं वरन उसके मनोबल में सन्निहित है। जब जिसका मनोबल जितनी मात्रा में विकसित हुआ तब उसने अपने क्षेत्र में उतनी ही अद्‌भुत सफलताएँ प्राप्त करके अपने उन साथियों को आश्चर्य में डाला है जो परिस्थितियों का रोना रोकर अपनी काहिली पर परदा डालने की कोशिश किया करते हैं।

मन को कल्पवृक्ष कहा है और इस पर चार फल—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष लगते हैं, ऐसा बताया गया है। दूसरों की सेवा करने से केवल धर्म ही प्राप्त हो सकता है। पर अपनी, अपने मन की सेवा करने से जब वह सुधर जाता है, सन्मार्ग पर चलने लगता है, तो धर्म लाभ के अनेकों अवसर तो प्राप्त होते ही हैं, साथ ही जीवन की

प्रत्येक दिशा में उन्नति व सफलता का द्वार खुल जाता है और सब ओर से आनंद तथा प्रसन्नताजनक परिस्थितियाँ उपजती दिखाई देने लगती हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धिमत्ता इसी में दिखाई पड़ती है कि पहले अपनी सेवा करने के लिए ही कटिबद्ध हुआ जाए।

यदि किसी का लक्ष्य पुण्य परमार्थ में नहीं है, केवल स्वार्थ साधन ही अभीष्ट है, तो उसे सेवा धर्म अरुचिकर एवं हानिकारक दिखाई देगा। अपनी शक्ति उसमें खरच करते समय उसे संकोच एवं दु:ख लगेगा पर अपनी सेवा करने में उसे वैसी कठिनाई न होगी। भौतिक जीवन की उन्नति के लिए मन का सधा हुआ होना आवश्यक है। यदि वह अव्यवस्थित, असंयमित है, तो कोई लौकिक सफलता भी न मिल सकेगी। इसलिए लौकिक सुख, संपत्ति चाहने वाले व्यक्ति को भी यह लाभदायक प्रतीत होगा कि मनोनिग्रह की दिशा में, आत्म-निर्माण की दिशा में कुछ प्रयत्न किया जाए।

जिसका मन बेकाबू है, उसका सांसारिक जीवन असफल एवं दु:खमय ही रहता है। चटोरी जीभ वाला व्यक्ति, जिसका मन हर घड़ी स्वादिष्ट पदार्थों को अधिक मात्रा में खाने के लिए ललचाता रहता है, वह अपनी बुरी आदत के कारण ही अपनी पाचन शक्ति को खो बैठता है और पेट खराब हो जाने पर नाना प्रकार के रोग उसे घेर लेते हैं। काम-वासना की लिप्सा जिसके मन पर चढ़ी रहती है, वह सोते-जागते अपने जीवन-रस को बेहिसाब निचोड़ता रहता है और अंत में भीतर से खोखला होकर असमय में ही जराजीर्णता और अकाल-मृत्यु का ग्रास बन जाता है। जिसका मन पढ़ने में नहीं लगता, वह विद्यार्थी भला किस प्रकार विद्वान हो सकेगा ? जिस व्यापारी का चित्त अपने व्यवसायों की बारीकियों पर नहीं जमता, उछला-उछला फिरता है, उससे पग-पग पर भूलें होती रहेंगी और असावधानी

की, विस्मृति की, उपेक्षा की मात्रा बढ़ते रहने से घाटे की दिशा में कारोबार चलेगा।

क्या कोई वैज्ञानिक ऐसा हुआ है, जिसमें तन्मयता का, चित्त की एकाग्रता का गुण न रहा हो? यदि उसमें ध्यानमग्न होने की विशेषता न रही होती तो वह कदापि कोई महत्त्वपूर्ण खोज न कर सका होता। इंजीनियर, डॉक्टर, कलाकार, चित्रकार, कवि, साहित्यिक जो कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं उसके पीछे मनोयोग ही काम करता है। राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, लोकनायक, सेनापति आदि महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियों का भार वहन करने वाले ही लोग होते हैं। जिनमें दूरदर्शिता होती है, समस्या के हर पहलू को बारीकी से सोच-समझ सकते हैं और यह सब मन के संयमित होने पर ही संभव है। ऐसे मनुष्य, जिनका चित्त किसी काम पर नहीं जमता, उखड़ा-उखड़ा रहता है, कभी किसी काम में सफल नहीं हो पाते। यहाँ तक कि चोरी, उठाईगीरी, बेईमानी, व्यभिचार में भी वे कृतकार्य नहीं होते, वहाँ भी पकड़े जाते हैं और बदनामी उठाते हैं।

योग साधना तो महर्षि पतंजलि के शब्दों में चित्तवृत्तियों का निरोध मात्र ही है। योग साधना का सारा कर्मकांड और विधि-विधान चित्त निरोध के लिए ही है। ध्यान की तन्मयता से ही भगवान के दर्शन होते हैं। विषय-विकारों की ओर से, माया-मोह की ओर से चित्त का हटा लेना ही मोक्ष है। मूर्तिपूजा, कीर्तन, भजन-पूजन का उद्देश्य भी मन की एकाग्रता ही है। सारी साधनाएँ मन को साधने के लिए ही हैं। भगवान के लिए क्या साधना करनी? वह तो पहले से ही प्राप्त है, रोम-रोम में रमा है, अनंत वात्सल्य और असीम करुणा की वर्षा करता हुआ, अपना वरद हस्त पहले ही हमारे सिर पर रखे हुए है, उसे प्राप्त करने में कठिनाई क्या है? कठिनाई तो मन के

कुसंस्कारों की है, जो आत्मा और परमात्मा के बीच में चट्टान बनकर अड़ा हुआ है। यदि वह अपनी अड़ से पीछे हट जाए तो उस अध्यात्म की सारी सिद्धि करतलगत ही है। मोक्ष और ब्रह्म निर्वाण प्राप्त हुआ ही रखा है। मन के काबू में आते ही सारी सिद्धियाँ मुट्ठी में आ जाती हैं।

मन सचमुच कल्पवृक्ष है। इसकी सेवा करके हम असीम लाभ और अनंत पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। स्वार्थ और परमार्थ इसमें दोनों ही सध सकते हैं। लौकिक सुख और पारलौकिक शांति की कुंजी हाथ आ सकती है। पर यदि उसे साधा न गया तो वह शैतान की तरह हमारे सिर पर सवार होकर नाना प्रकार के कुकृत्य कराता है, विविधविध नाच नचाता है। यदि हम इसे वश में नहीं करते, तो इसके वश में हमें होना पड़ता है। कहते हैं कि भूत लोगों को डराता और सताता रहता है, पर यदि कोई तांत्रिक उसे वश में कर लेता है तो फिर उसकी इच्छानुसार नाचता है, जो कुछ कराना चाहता है करता है और जो मँगाया जाता है लाकर देता है। सचमुच का भूत किसी को देखना हो तो वह अपने मन के रूप में देख सकता है। असंयमी और उच्छृंखल मन किसी प्रबल शत्रु से, बेताल, ब्रह्मराक्षस से कम नहीं है, पर यदि उसे साध लिया जाए तो वही परम मित्र बन जाता है, देवता की तरह सहायक सिद्ध होता है।

मनोभावों पर जीवन का विकास निर्भर है

मनोविज्ञान का एक अटल नियम है कि जो व्यक्ति अपने मन में जिस प्रकार की भावना सँजोए रहता है वह अंततः वैसा ही बन जाता है। एक पहलवान और एक श्रमिक अपने-अपने तरह से शारीरिक श्रम ही किया करते हैं। पसीना बहाते और शरीर में थकान लाया करते हैं। किंतु उसमें से एक हृष्ट-पुष्ट हो जाता है और दूसरा क्षीण।

यह अंतर केवल भावना का है। पहलवान व्यायाम का श्रम करते समय यह भावना रखता है कि वह जो शारीरिक श्रम कर रहा है, पसीना बहा रहा है, वह स्वास्थ्य लाभ के लिए कर रहा है और उसे आएदिन स्वास्थ्य लाभ हो रहा है। अपनी इसी भावना के अनुसार वह हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ठ हो जाता है। श्रमिक की भावना श्रम करते समय ऐसी नहीं होती। वह सोचता है कि वह पेट के लिए औरों की मजदूरी कर रहा है। पैसे के लिए सेवा कर रहा है। जीविका की मजबूरी उससे परिश्रम करा रही है। अपनी इसी भावना के कारण वह पहलवान की तरह हृष्ट-पुष्ट नहीं हो पाता। विवशता एवं मजबूरी की भावना से उसका शरीर थक जाता है। उसकी शक्तियों का ह्रास होता जाता है।

भावना के प्रभाव का यह सत्य कभी भी किसी भी क्षेत्र में देखा जा सकता है। जो विद्यार्थी विद्या प्राप्त करने, परीक्षा में सफल होने की भावना से अध्ययन किया करता है, वह शीघ्र ही योग्यता प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत जो मजबूरी के साथ, अभिभावकों अथवा अध्यापकों के त्रास से पढ़ा करता है, वह कोई लाभ नहीं उठा पाता। उसका अधिकांश श्रम बेकार चला जाता है।

स्वास्थ्य परीक्षा के अवसर पर दो व्यक्तियों को एक साथ यक्ष्मा का रोगी घोषित किया गया। यह घोषणा दोनों के लिए समान चिंता का विषय थी। डॉक्टर का यह घोषित कर देना कि उन्हें यक्ष्मा हो गई है और शीघ्र ही उनके जीवन के अंत हो जाने की संभावना है, एक भयंकर आपत्ति ही है। किंतु उन दोनों रोगी व्यक्तियों में से एक की भावना बड़ी दृढ़ थी। उसने डॉक्टर की घोषणा को सत्य स्वीकार करते हुए मृत्यु की संभावना को स्वीकार नहीं किया। उसने अपने इस अमृत विश्वास को नष्ट न होने दिया कि मृत्यु की अपेक्षा जीवन में अधिक

शक्ति है। जीवन की अपेक्षा यदि मृत्यु प्रबल होती, तो संसार को श्मशान होना चाहिए था। यह जीवन की प्रबलता का ही प्रमाण है कि संसार में इतनी चहल-पहल दिखाई देती है। यदि मनुष्य के हृदय से मृत्यु का भाव सर्वथा तिरोहित हो पाए, जीवन के प्रति अविश्वास का अत्यंत अभाव हो जाए, तो निश्चय ही वह अमर हो सकता है। जिसके हृदय में जीवन के प्रति पूर्ण दृढ़ विश्वास रहता है, वह आज भी दीर्घजीवी होते हैं।

जीवन के प्रति गहरी निष्ठा रखने वाले रोगी ने अपनी भावनाओं को दृढ़ किया। अपना आत्मविश्वास जगाया और प्रतिदिन सायंकाल एवं प्रातःकाल शांतचित्त होकर अपने उत्तरोत्तर स्वस्थ होने का चिंतन करना प्रारंभ किया। औषधि के साथ उसने अमृत भावना के घूँट भी पीना प्रारंभ किया। इस प्रकार प्रतिक्षण अपने स्वस्थ होने की भावना करते-करते एक दिन ऐसा आया कि वह तपेदिक का रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसके रोम-रोम में आरोग्य की पुलक उठने लगी और शीघ्र ही वह पहले से भी अधिक स्वस्थ होकर उत्साहपूर्वक अपना काम करने लगा।

दूसरे रोगी का मन निर्बल था। डॉक्टर की घोषणा सुनकर उसका हृदय बैठ गया। जीवन के प्रति उसका विश्वास जर्जर हो गया। प्रतिक्षण उसे मृत्यु की ही चिंता रहने लगी। हर रोज वह अपने स्वास्थ्य में पहले से क्षीणता का अनुभव करने लगा। इस प्रकार की भावना करते रहने का परिणाम यह हुआ कि उसे न तो किसी औषधि ने लाभ किया और न कोई पथ्य ही काम आया। शीघ्र उसने चारपाई पकड़ ली और कुछ ही समय में इस साध्यपूर्ण संसार को अपने जैसों के लिए असाध्य सिद्ध करके चलता बना। एक ही घातक रोग से पीड़ित दो व्यक्तियों की यह विपरीत दशा, उनकी अपनी भावना का ही परिणाम था।

जीवन के प्रति विश्वास रखने वाले आत्मधनी व्यक्ति अपने सिर पर मृत्यु की काली छाया कभी मँडराने नहीं देते। वे हर समय जीवंत भावनाओं से ओत-प्रोत संसार-समर में डटा करते हैं। बड़ी से बड़ी विपरीत परिस्थिति आ जाने पर अपने मनोबल को गिरने नहीं देते। हजार बार गिरकर उठने और आगे बढ़ने का हौसला रखा करते हैं। उसके सोचने का ढंग सृजनात्मक होता है। जीवन की मनोरम पगडंडी पर चलते हुए वे कभी भी इस प्रकार सोचने की धृष्टता नहीं करते कि—"संसार नश्वर है, जीवन क्षणभंगुर है। इस भवसागर में मनुष्य का अस्तित्व एक जल बुद्‍बुद से अधिक कुछ भी नहीं। जब तक हवा का एक-एक झोंका नहीं लगता, बुल्ला पानी पर तैरता रहता है पर ज्यों ही हवा की चपेट लगी कि इसका अस्तित्व विलीन हो जाता है।" वे जीवन के प्रति विश्वास रखने वाले आत्मवीरों की तरह यही सोचते रहते हैं कि "जीवन एक शाश्वत सत्य है। मृत्यु इसके बीच में एक आरोपित अवकाश है, मध्यांतर है। मृत्यु की काली छाया जीवन ज्योति को कदापि नष्ट नहीं कर सकती।"

कोई भी मन-मूर्च्छित व्यक्ति देखने में कितना ही स्वस्थ अथवा हृष्ट-पुष्ट क्यों न हो, अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। मृत्यु के प्रति भयभीत, नश्वरता का चिंतन करने वाले की निर्धारित आयुष्य भी कम हो जाती है, जबकि जीवन का विश्वासी व्यक्ति कम होती हुई आयु को आत्मबल से बढ़ा देता है।

स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन जहाँ रोगों को जन्म देता है, वहाँ स्वास्थ्य के प्रति अविश्वास उनको घातक बना देता है। मनुष्य का अनिष्ट वास्तव में किसी परिस्थिति, विपत्ति अथवा व्याधि से नहीं होता है, वह होता है उसकी उस अशिव भावना से, जिसमें अनिष्ट का चिंतन निवास करता है। अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि एलेक्जेंडर पोप, जो

कि जन्मजात रोगी थे और जिनके बचने की कोई आशा नहीं की जाती थी, उन्होंने अपने स्वास्थ्य लाभ एवं दीर्घ आयु का रहस्य बतलाते हुए लिखा है—

"यह बात सही है कि मैं शैशवकाल से ही रोगी रहता आया था, धीरे-धीरे रोग इतना बढ़ गया कि मेरे बचने की आशा जाती रही। बहुत कुछ दवादारू करने पर भी आरोग्य के लक्षण दृष्टिगोचर न होते थे और धीरे-धीरे एक दिन ऐसा आया कि मेरे चिकित्सकों ने जवाब दे दिया। आरोग्य लाभ के विषय में हर ओर से निराश होकर मैंने अपने भरोसे अपना नवीन कायाकल्प कर डालने का संकल्प किया।"

महाकवि पोप आगे लिखते हैं—"उन्होंने आरोग्य नियमों से सम्मत अपनी एक छोटी सी दिनचर्या बनाई, जिसमें आहार-विहार, रहन-सहन तथा आचार-विचार का भी समावेश था। अपनी दिनचर्या के अनुसार उन्होंने अनिवार्य एवं अतीव्र दवाओं के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की दवा लेना बंद कर दिया। नित्यप्रति प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्त में उठते और खुली हवा में सामर्थ्यानुसार घूमने जाने लगे। नियमित रूप से रात में समय पर सोते। रात्रि में सोने के पूर्व तथा प्रभात में जगने के बाद, वे ईश्वर का चिंतन करते और अपनी प्रार्थना में कहते—प्रभु, मुझे स्वास्थ्य एवं आयु प्रदान कर, जिससे कि मैं साहित्य द्वारा मानव-समाज की सेवा कर सकूँ। मुझे स्वास्थ्य एवं आयु की कामना इसलिए नहीं है कि मैं इस दुनिया के भोग भोगना चाहता हूँ।" शुद्ध सात्विक आहार और कल्याणकारी विचारधारा ने उनके रोग को दूर करना प्रारंभ कर दिया।

पोप का कहना है कि उन्होंने अच्छी प्रकार से अनुभव कर लिया था कि उनके स्वास्थ्य को रोगों की अपेक्षा दुर्बल स्वास्थ्य के निरंतर चिंतन ने अधिक क्षीण बना दिया था। उनके अनिष्ट विचार ही

उनकी हर विपत्ति का मुख्य कारण होते थे। चिंता, निराशा, अविश्वास अथवा मृत्यु की कल्पना उन्हें दिन-दिन गिराती चली गई, किंतु जिस दिन से उन्होंने आत्म-भावना का सहारा लेकर अपने को निरोग तथा आयुष्मान मानना प्रारंभ किया, उनके स्वास्थ्य में चमत्कारी परिवर्तन प्रारंभ हो गया। स्वास्थ्य के नियमों का पालन, युक्ताहार-विहार तथा पुष्टिकर भावनाओं ने उन्हें शीघ्र ही स्वस्थ बना दिया। उनके आशापूर्ण विचारों तथा प्रसन्न चिंतन ने शीघ्र ही वरदान सिद्ध होकर उन्हें स्वास्थ्य तथा दीर्घ आयु प्रदान की, जिससे वे एक लंबे समय तक काव्य द्वारा मानवता की सेवा करते रहे।

दुर्बल भावना एवं निर्बल विश्वास रखने वाले व्यक्तियों को इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए और समझ लेना चाहिए कि हमारे अशिष्टकर विचार ही हमको बीमार, विवश, संतप्त एवं अल्पायु बनाया करते हैं। हमारे अनिष्ट में परिस्थितियों अथवा कुसंयोगों का हाथ बहुत कम रहा करता है। किसी भी रोग अथवा विपत्ति के आ पड़ने पर यदि मनुष्य अपनी आशा, उत्साह एवं आत्मविश्वास को त्यागकर चिंतित, असंतुलित, निराश, भयभीत अथवा शंकाकुल न हो तो कोई कारण नहीं कि वह अपने शुभ संकल्पों के बल पर बड़े से बड़े संकट पर विजय प्राप्त न कर सके।

मनुष्य की भावना ही मृत्यु है और वही अमृत। भावना की तेजस्विता मनुष्य में ओज, तेज तथा आयुष्य की वृद्धि करती है, जबकि उनकी मलीनता जीवित रहने पर भी निर्जीव बना देती है।

शारीरिक दृष्टि से निर्बल हो जाने पर भी मनुष्य को मानसिक रूप से सबल बना रहना चाहिए। अपने मनोबल को बनाए रखने से शीघ्र ही ऐसा समय आ जाएगा और मनुष्य शारीरिक दृष्टि से भी सबल बन जाएगा। हमारे विचारों का प्रवाह जिस ओर होगा, निश्चय

ही हम उसी ओर बढ़ेंगे। उद्वेग, शोक, दुःख, चिंता, निराशा अथवा जीवन के प्रति अविश्वास की भावना रखने वाले संसार में कदापि सफल अथवा सुखी नहीं रह सकते। आत्मविश्वास के साथ शक्तिभर प्रयास करने, आशापूर्ण दृष्टिकोण से देखने और साहस के साथ संघर्ष करने वाले कर्मवीर सारी कठिनाइयों को जीतकर जीवन के रंगमंच पर प्रतिष्ठित होते हैं। जरा सी कठिनाई आ जाने पर रोने लगने वाले, घबराकर हाथ-पैर छोड़ देने वाले अथवा अपनी शक्तियों में अविश्वास करने वाले संसार के हर सुख से वंचित रहकर शोक-संताप से भरा जीवन काटने के ही अधिकारी बन सकते हैं।

दृढ़ मनोभावों से जीवन-निर्माण

मनुष्य का निर्माण उसकी भावनाओं की पृष्ठभूमि पर होता है। जैसा वह सोचता-समझता और विचार करता है, प्रायः वैसा ही बन जाता है। भलाई की भावना लोगों को उच्च स्तर की ओर, महानता की ओर अग्रसर करती है। अनिष्टकारी, दीन और निकृष्ट भावनाओं से मनुष्य का जीवन दुखी, उदासीन तथा पतनोन्मुख होता है। क्योंकि भीतरी भावनाओं के अनुरूप ही बाहरी क्रिया-कलाप होते हैं और वैसे ही परिणाम भी उत्पन्न होते हैं। काम से अधिक उस भावना का महत्त्व होता है, जो उस क्रिया का संचालन करता है। जो काम शुद्ध हृदय से होता है। देखने में वह छोटा भले ही हो, परंतु उसका फल बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होता है। बड़ा से बड़ा काम भी अगर हीन आदर्श लेकर किया जाए, तो उसकी कोई बड़ी कीमत नहीं हो सकती।

बुराइयों के प्रति लोगों में जिस तरह आकर्षण होता है, उसी तरह यदि ऐसा दृढ़ भाव हो जाए कि हमें अमुक शुभ-कर्म अपने जीवन में पूरा करना ही है, तो उस कार्य की सफलता असंदिग्ध हो

जाएगी। यदि सिनेमा न देखने का, बीड़ी-सिगरेट न पीने का, जुआ न खेलने का, मांस-मदिरा न सेवन करने का व्रत ठाना जाए और उस व्रत का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाए, तो इन दुर्गुणों के कारण मलिन होने वाले स्वभाव में स्वच्छता आएगी, स्वास्थ्य बना रहेगा, मानसिक संतुलन बना रहेगा। यह लाभ मिल सकते हैं, किंतु उन्हें सत्संकल्पों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

झूठ बोलना अब लोग व्यावहारिक समझने लगे हैं। इसी कारण से सात्विक जीवन के अनेक उद्देश्य इच्छा रखते हुए भी पूरे नहीं हो पाते। बीड़ी पीना स्वास्थ्य और आर्थिक तथा समय की दृष्टि से नितांत हानिकारक है, यह हर बीड़ी पीने वाला समझता है और उसके अनौचित्य तथा दुष्परिणाम से प्रभावित होकर धूम्रपान न करने की शपथ लेता है, किंतु दृढ़ भावना के अभाव में वह प्रतिज्ञा निभ नहीं पाती, पूरी नहीं हो पाती। सत्य के लिए श्रद्धा होती और उद्देश्य में कुछ सबलता रही होती तो यह कार्य ऐसे नहीं हैं जिन्हें करने पर मनुष्य को कुछ हानि होती। उलटे इसमें फायदा ही है। पर लोगों का मनोबल इतना दुर्बल होता है कि वे संकल्प कर लेने के बाद देर तक उसमें टिक नहीं पाते। शपथ या संकल्प की विजय दृढ़ निश्चय और सुदृढ़ भावना से होती है।

महापुरुषों की सफलता में उनकी दृढ़ भावना, उच्चतम उद्देश्य के लिए अन्यतम कष्ट सहिष्णुता ही प्रधान कारण होती है। महाराणा प्रताप ने सौगंध खाई थी कि मेवाड़ को वापस न लेने तक वे राजसी जीवन को धारण नहीं करेंगे। महात्मा गांधी का स्वतंत्रता आंदोलन उनके दृढ़ निश्चय का प्रतीक था। महर्षि दयानंद के हृदय में अपने धर्म, संस्कृति के उत्थान की प्रबल भावना थी, तभी इन पुरुषों ने अपने लक्ष्य को पूरा भी किया। हवा के एक झोंके में बुझ जाने वाला दीपक

नहीं, निरंतर संकल्पशील सूर्य ही संसार को प्रकाश दे पाता है। जीवन में किसी सद् उद्देश्य की सफलता के लिए दृढ़ निश्चय होना आवश्यक है।

दृढ़ भावना रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास करती है। उससे सफलता के अनेकों नए-नए मार्ग स्वतः खुल पड़ते हैं। जिन्हें सामान्य श्रेणी के व्यक्ति बड़े कुतूहल से देखते हैं। जीवन में जो कुछ करना है उसके लिए यदि मनुष्य का साहस जाग जाए, तो शायद ही कोई बाधा उसे निश्चय से हटा सके। विद्याबाँकुरे ईश्वरचंद्र विद्यासागर अत्यंत निर्धन परिवार के थे, मुश्किल से फीस और किताबों के पैसे जुटा पाते थे, किंतु विद्याध्ययन की जो उनमें उत्कट चाह थी, उससे उनकी वह मनोकामना भी पूरी हुई। विद्यासागर चौराहे की लालटेन के प्रकाश में बैठकर अपना पाठ याद किया करते थे। अपने अदम्य उत्साह और परिस्थितियों से संघर्ष करने की शक्ति के बल पर ही वे सिद्ध मनोरथ हो सके।

मनुष्य की असलियत का उद्बोधन उसकी आंतरिक भावनाएँ कराती हैं। भावनाओं का प्रभाव चेहरे पर भी लक्षित हुए बिना नहीं रहता। पापी, कुकर्मी तथा आतताई मनुष्यों की मुखाकृति ही बतला देती है कि वह कैसा आदमी है। गंभीर व्यक्तियों को देखने से ही उनके प्रभाव का पता चल जाता है। मनुष्य की निकृष्टता या उत्कृष्टता के भाव उसकी प्रत्येक क्रिया, रहन-सहन व मनोबल से परिलक्षित होते हैं। इन्हीं के आधार पर औरों से मान-सम्मान, मैत्री, आत्मीयता आदि की प्राप्ति होती है। जिनकी भावनाएँ भौंड़ी और कुरूप होती हैं, उनसे लोग घृणा करते हैं। जिनकी भावनाएँ ऊँची होती है, दृढ़ और रचनात्मक होती हैं उनकी समीपता से लोगों को प्रेरणा मिलती है।

मनुष्य के जीवन में इस प्रकार भावनाओं की गहराई न रहे तो चारित्रिक पतन हो सकता है। शील और सदाचार का अविचलित-अविच्छेद योग न रहे, तो वे सभी भाव-संस्पर्श उसके लिए घातक ही सिद्ध होंगे अर्थात उसके जीवन से सद्प्रवृत्तियों का भाग नष्ट हो जाएगा और कुविचार एवं कुचेष्टाएँ बढ़ने लगेंगी। ऐसी स्थिति में मनुष्य का जीवन बरबाद और निरर्थक हो जाता है, जिस तरह हरे पेड़ को काट देने पर सूर्य का ताप उसे सुखा देता है। इसी प्रकार उत्पन्न हुई चारित्रिक दुर्बलता लोगों को विषय-सुख और भोगों की ओर प्रेरित करेगी, परिणामस्वरूप जीवन के सात्विक लक्ष्य पूर्ण न होंगे और सफलता की पुष्टि का मार्ग बंद हो जाएगा। दुर्बल तथा क्षीण चित्त के लिए ज्ञान का भी कुछ लाभ नहीं है। वह ज्ञान पूर्णतया लौकिक कामनाओं में ही लगा रहेगा अतः बुरे परिणाम पैदा होने में कोई संदेह न रहेगा।

भावनाएँ मनुष्य का जीवन होती हैं। इनके बिना उसमें किसी रस या उल्लास का आनंद मनुष्य को नहीं मिलता। वह केवल प्रगल्भ विचारों के ही आस-पास चक्कर काटता रहता है जिससे मनुष्य का जीवन केवल सांसारिक ही बना रहता है। इसलिए अब जीवन निर्माण में तब की अपेक्षा अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। सत्पथ पर चलते हुए भी मनुष्य धोखा खा सकता है, पथभ्रष्ट हो सकता है। अतः अपने जीवन लक्ष्य का निर्धारण हमें पूरी सावधानी के साथ करना चाहिए और आध्यात्मिक जीवन की आवश्यकता को स्वीकार कर लेने के बाद दृढ़तापूर्वक, मनोयोगपूर्वक उसमें लगा रहना चाहिए। आपकी भावनाएँ दृढ़ बनी रहेंगी, निश्चय बलवान बना रहेगा तो अनेक कठिनाइयों में भी आप निर्भयतापूर्वक अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ते रहेंगे। मनुष्य का पौरुष दृढ़ निश्चय में है। सुदृढ़ भावनाओं वाले व्यक्ति ही आत्मजयी होते हैं।

मन:शक्ति की प्रचंड क्षमता

जीवन की सफलता-असफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन, सब मनुष्य की इच्छाशक्ति अथवा मन:शक्ति की सफलता और निर्बलता के परिणाम हैं। सबल दृढ़ इच्छा संपन्न लोगों को अभद्र विचार, कुकल्पनाएँ, भयानक परिस्थितियाँ और उलझनें भी विचलित नहीं कर सकतीं। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। उन्हें बार-बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छाशक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर परिस्थिति में अपना रास्ता निकालकर आगे बढ़ते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नहीं होते।

दृढ़ इच्छाशक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है जिसमें किसी भी बाह्य परिस्थिति, कल्पना, कुविचारों का प्रभाव नहीं हो सकता। दृढ़ इच्छाशक्ति संपन्न व्यक्ति जीवन की भयंकर झंझावातों में भी अजेय चट्टान की तरह अटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शांत रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, सौंदर्य, प्रसन्नता, शांति उसके साथ रहते हैं।

भीष्म पितामह अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर सारे शरीर के बाणों से छिदे रहने पर भी छह माह तक शर-शय्या पर पड़े रहे और चेतन बने रहे। दूसरे इस तरह के व्यक्ति भी होते हैं, जो अपने तनिक से घाव, चोट में चिल्लाने लगते हैं, बेहोश हो जाते हैं, कई तो भय के कारण मर तक जाते हैं। सत्यव्रती हरिश्चंद्र अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों की परीक्षा की घड़ी अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण ही निभा सके थे। दूसरी ओर कई लोग जीवन की सामान्य-सी परिस्थितियों में रो देते हैं, हार बैठते हैं। जीवन की संभावनाओं का अंत कर डालते हैं।

महाराणा प्रताप जिन्होंने वर्षों जंगलों की खोहों में जीवन बिताया, बच्चों सहित नंगे भूखे-प्यासे भटकते रहे, किंतु इसके बावजूद भी दृढ़ इच्छाशक्ति के सहारे वह अजेय वीर शक्तिशाली मुगल सल्तनत को चुनौती देता रहा और झुका नहीं। थोड़ी ही संख्या में दुबले-पतले क्रांतिकारियों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को जो तूल दिया और विश्वव्यापी ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी, वह उन वीरों की दृढ़ इच्छा शक्ति का ही परिणाम था। फाँसी की सजा सुनने पर भी जिनका वजन बढ़ा, फाँसी के तख्ते पर पहुँचकर जिन्होंने अपनी मुस्कराहट से मौत के भययुक्त स्वाँग का गर्व चूर कर दिया, यह सब उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति की ही करामात थी।

संसार में जितने भी महान कार्य हुए, वे मनुष्य की प्रबल इच्छाशक्ति का संयोग पाकर ही हुए। दृढ़ इच्छाशक्ति संपन्न व्यक्ति ही महान कार्यों का संचालन करता है। वही नव-सृजन, नव-निर्माण, नव-चेतना का शुभारंभ करता है। अपने और दूसरों के कल्याण, विकास एवं उत्थान का मार्ग खोजता है।

निर्बल इच्छाशक्ति वाले मनुष्य अपने या दूसरे के लिए कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकते। ऐसे लोगों के मन में अनेकों संदेह, कुकल्पनाएँ, कुविचार पैदा होने लगते हैं। उनके निश्चय बार-बार बदलते हैं। एक काम को अधूरा छोड़कर दूसरे को हाथ में लेते हैं, फिर दूसरे को छोड़कर तीसरे को करने लगते हैं। छोटी-छोटी कठिनाइयों में उलझकर ही परेशान होने लगते हैं। निर्बल इच्छाशक्ति से अपने और दूसरों के अकल्याण की भावनाएँ निर्बाध गति से आने-जाने लगती हैं। परीक्षा में बैठने पर असफलता का भय सताने लगता है। व्यापार करने पर घाटे के भय से चिंतित एवं परेशान होने लगते हैं। अँधेरे में चलने पर भी भूत, चोर, गुंडे का डर खाने लगता है। घर

में कोई बीमार पड़ जाए तो सोचा जाता है कहीं मर नहीं जाए। इस तरह दुर्बल इच्छाशक्ति के कारण मनुष्य तरह-तरह की आशंका, शंका, कल्पित भय, चिंता, परेशानियों से परेशान, दुखी, उद्विग्न एवं अशांत रहता है। हीन भावनाओं से ग्रस्त हो निराशा, अवसाद, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष से युक्त हो जाता है।

इच्छाशक्ति की दुर्बलता से कई लोग अपने आपको कल्पित रोगों से ग्रस्त समझकर परेशान होने लगते हैं और हर उपचार में कोई न कोई मीन-मेख निकालते हैं। रोग घट रहा हो तो उन्हें कहीं फिर न बढ़ जाए यह डर लगा रहता है। यदि परीक्षण किया जाए, तो वास्तविक रोगियों की संख्या कम मिलेगी और इस तरह के कल्पित रोगों से ग्रस्त लोग अधिक मिलेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इच्छाशक्ति की दुर्बलता से आजकल प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको किसी न किसी रोग से ग्रस्त ही समझता है। कई तो इतने परेशान रहते हैं मानो वे किसी भयंकर रोग से पीड़ित हैं और वस्तुतः बात ऐसी नहीं होती। दृढ़ इच्छाशक्ति के सहारे बड़े-बड़े रोगों के आक्रमण से भी बचा जा सकता है और अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

मनुष्य के विचार, भाव, क्रिया स्वयं उसी तक सीमित नहीं रहते। इनका प्रभाव समस्त वातावरण पर भी पड़ता है। रेडियो स्टेशन के ट्रांसमीटर से छोड़ी हुई ध्वनि तरंगें सर्वत्र फैल जाती हैं, ठीक इसी तरह व्यक्ति के क्रिया-कलाप, हाव-भावों का भी प्रसार होकर वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। ये संक्रामक होते हैं और दृश्य या अदृश्य रूप में एक व्यक्ति से चलकर दूसरों तक फैल जाते हैं। दृढ़ इच्छाशक्ति संपन्न व्यक्ति जिस समाज में होंगे वह समाज भी शक्तिशाली, दृढ़ और महत्त्वपूर्ण होगा। कायर, डरपोक, दुर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति समाज में अपनी दुर्बलताओं का संचार करते हैं।

निर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति समाज में भीरुता, कायरता, संदेह, कुकल्पनाओं का संचार करते हैं। जिस देश के कर्णधार नेताओं की इच्छाशक्ति दुर्बल होगी, तो वह वहाँ की प्रशासनिक मशीनरी और फिर जनता तक फैल जाएगी। जैसे अपने बारे में अहितकर बातें सोचने पर दुष्परिणाम पैदा होते हैं उसी तरह जिसके लिए बुरी बात सोची जाएगी, वह भी बुराई से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। यदि उसकी इच्छाशक्ति दुर्बल होगी तो वह सहज ही दूसरों के द्वारा कुकल्पित दुर्भावनाओं का शिकार हो जाएगा। भूतों के भय से डरने वाले अपने संक्रामक विचारों से दूसरों में भी भूत के भय की भावना पैदा कर देते हैं। घृणा करने वाले दूसरों में भी घृणित विचारों का प्रसार कर देते हैं। लड़ाई के मैदान से भाग जाने वाला एक सिपाही कई सिपाहियों में मैदान छोड़ने की भावना पैदा कर देता है। इच्छाशक्ति की दुर्बलता भी उतनी ही संक्रामक है जितनी सबलता। जहाँ सबल इच्छाशक्ति के व्यक्तियों का बाहुल्य होगा वह समाज उन्नति-प्रगति की ओर सहज ही उठ जाएगा। जहाँ दुर्बल इच्छाशक्ति के लोग होंगे वह समाज पतन की ओर अग्रसर हो जाएगा।

हमें अपनी इच्छाशक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। साहस और धैर्य का अभ्यास करने से बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ भी सहज ही हल हो जाती हैं और पराक्रमी व्यक्ति आसानी से उन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। भीरु पुरुष तो कठिनाइयों में जितने त्रस्त होते हैं, उससे अधिक उनकी आंतरिक दुर्बलता ही कष्ट देती रहती है। मानव जीवन में इच्छा शक्ति एक अत्यंत मूल्यवान संपत्ति है और इसे हम अधिकाधिक मात्रा में संपादित करें, यही उचित है।

मन में संकल्प जगाइए, आप में बड़ी शक्ति है

शारीरिक अंग-प्रत्यंग और इंद्रियाँ संसार में सबको समान रूप से मिली हैं। फिर भी मनुष्य के जीवनक्रम और गतिविधियों में भारी

अंतर पाया जाता है। जय-पराजय, सफलता-असफलता, जीवन और मृत्यु के द्वंद निरंतर चलते रहते हैं। जो व्यक्ति अपने आंतरिक क्षेत्र में फैली हुई संकल्प शक्ति का प्रयोग नहीं करते उन्हें पराजय, असफलता और मृत्यु प्राप्त होती है, पर जिनके संस्कारों में दृढ़ता, तीव्र मनोबल और सुदृढ़ संकल्प शक्ति विद्यमान है; जय, जीवन और सफलता सदैव उसकी दासी बनकर काम करती है। संकल्पवान पुरुष ही जीवन संग्राम में विजय पाते हैं, कमजोर इच्छाशक्ति वालों का साथ प्रकृति भी नहीं देती।

संध्या, उपासना, दान, अनुष्ठान, यज्ञ, पुरश्चरण आदि के आचार्य यज्ञमान को संकल्प ग्रहण कराते हैं। उनके इस उद्देश्य में कोई नवीनता भले ही न आती हो, पर सारी मानसिक चेष्टाएँ एक ही लक्ष्य की ओर मिल जाती हैं, फलस्वरूप आने वाली बाधा-कठिनाई का विचार पहले ही आ जाता है जिससे प्रतिकूल परिणाम से बच जाते हैं। मानसिक शक्तियों का केंद्रीयकरण इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि उसे जिस कार्य में लगा दिया जाए उधर ही आशाजनक सफलता मिलने लगती है।

संकल्प क्रियाशक्ति में तन्मयता की प्रतिष्ठा का नाम है। ''यह मेरा संकल्प है'' का अर्थ है—अब मैं इस कार्य में प्राण, मन और समग्र शक्ति के साथ संलग्न हो रहा हूँ। इस प्रकार की विचारणा, दृढ़ता ही सफलता की जननी है। संकल्प तप का, क्रिया शक्ति का विधायक है। इसी से उसमें अनेकों सिद्धियाँ और वरदान समाहित हैं।

जिन विचारों से मनोभूमि में स्थायी प्रभाव पड़ा है और जिनसे अंत:करण में अमिट छाप पड़ती है, वे पुनरावृत्ति के कारण स्वभाव के एक अंग बन जाते हैं। ऐसे विचारों को क्रमबद्ध रीति से सजाने की क्रिया जिन्हें ज्ञात होती है वे अपना भाग्य, दृष्टिकोण और वातावरण

परिवर्तित कर सकते हैं और इस परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन में कोई विशेष दृश्य या स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा जाता है। जब किसी बात की तीव्र इच्छा होती है, तो उसे पूर्ण करने के लिए साधनों की तलाश आरंभ होती है, अतः कोई न कोई उपाय भी निकल ही आता है। यह इच्छा यदि प्रेरक है, उसे पूरा करने की भूख यदि भीतर से उठी है और उसके पीछे पर्याप्त प्राण और जीवन लगा हुआ है कि "मैं इस वस्तु को प्राप्त करके रहूँगा, चाहे कितनी ही बाधाएँ क्यों न आएँ। प्रयत्न निरंतर जारी रखूँगा चाहे कितने ही निराश करने वाले अवसर क्यों न आएँ।" इस प्रकार के संकल्प की यदि मन में गहरी और सुदृढ़ स्थापना हो जाए तो लक्ष्य तक पहुँचना बहुत सरल हो जाता है। दूसरे के लिए कठिन जान पड़ने वाला कार्य भी उस संकल्पवान के लिए सामान्य क्रिया से अधिक नहीं रह सकता।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिए बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना भी आवश्यक है। उन्नति का क्रम टूटना नहीं चाहिए, आगे बढ़ने से रुकना या हिचकिचाना नहीं चाहिए। पर यह तभी संभव है जब हमारा संकल्प, हमारा उद्‌देश्य अटूट साहस, श्रद्धा एवं शक्ति से ओत-प्रोत हो। आधे मन से, उदासीन होकर काम करने वाला फूहड़ कहा जाता है। उसे कोई विशेष सफलता मिल भी नहीं पाती।

अन्यमनस्कता, उदासीनता और मुरदादिली को छोड़कर ऊँचे उठने की कल्पना मनःक्षेत्र को सतेज करती है। इससे साहस, शौर्य, कर्मठता, उत्पादन, शक्ति, निपुणता आदि गुणों का आविर्भाव होता है। इन गुणों में शक्तियों का वह स्रोत छुपा हुआ है जिससे संतोष, सुख और आनंद का प्रति क्षण रसास्वादन किया जा सकता है। निकृष्टता मनुष्यों में दुर्गुण पैदा करती है। जिससे चारों ओर कष्ट और क्लेश के

परिणाम ही दिखाई दे सकते हैं। संकल्प को इसीलिए जीवन की उत्कृष्टता का मंत्र समझना चाहिए, उनका प्रयोग मनुष्य जीवन के गुण विकास के लिए होना चाहिए।

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिए। "साधनों के अभाव में हम किस प्रकार आगे बढ़ सकेंगे"—ऐसे कमजोर विचारों का परित्याग कर दीजिए। स्मरण रखिए; शक्ति का स्त्रोत साधनों में नहीं, संकल्प में है। यदि उन्नति करने की, आगे बढ़ने की इच्छाएँ तीव्र हो रही होंगी, तो आपको जिन साधनों का अभाव दिखाई पड़ता है, वे निश्चय ही दूर हुए दिखाई देंगे। संकल्प में सूर्य रश्मियों का तेज है, वह जाग्रत चेतना का शृंगार है, विजय का हेतु और सफलता का जनक है। संकल्प से प्राप्त मन के द्वारा स्वल्प साधनों में भी मनुष्य अधिकतम विचार कर सकता है और मस्ती का जीवन बिता सकता है।

उन्नति की आकांक्षा रखना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, उसे आगे बढ़ाना भी चाहिए, पर यह तभी संभव है जब मनुष्य का संकल्प-बल जाग्रत हो। जो लोग अपने को दीन, हीन, असफल और पराभूत समझते हों, संकल्प उनके लिए अमोघ अस्त्र है। संकल्प के द्वारा प्रत्येक मनुष्य जय, जीवन और सफलता प्राप्त कर सकता है।

❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ० प्र०)